सल्लेखना बनाम आत्महत्या

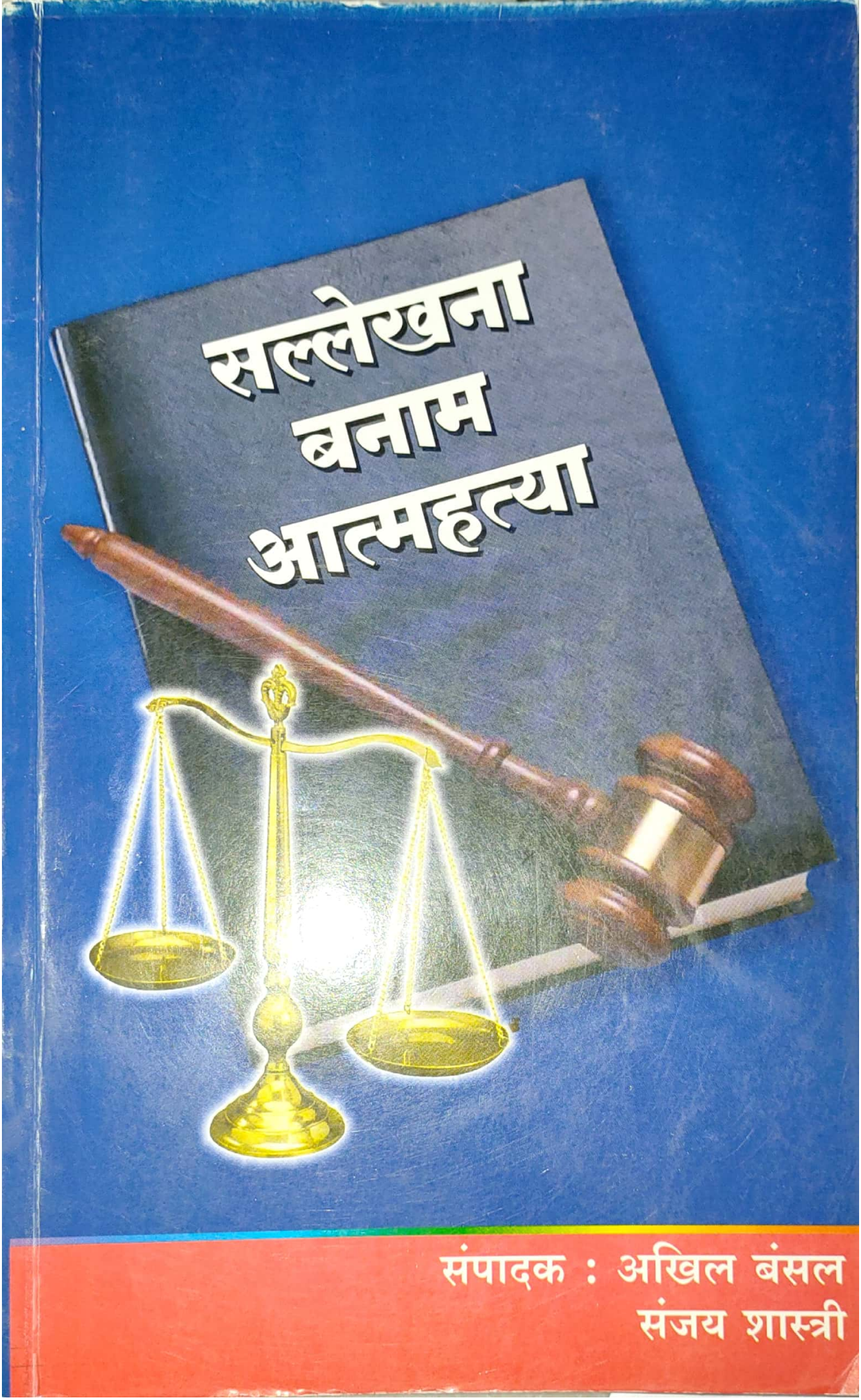

संपादक : अखिल बंसल
संजय शास्त्री

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

क्या	कहाँ
सल्लेखना या समाधिमरण	9
सल्लेखना : जीवन की चरम सिद्धि	14
श्रावकाचार में संल्लेखना : एक अनुचिन्तन	31
समाधिमरण	39
आत्मघात एवं समाधिमरण में अंतर	48
सल्लेखना (समाधिमरण) विचार	49
सल्लेखना (संथारा) के सन्दर्भ ङ्कें जैन दृष्टिकोण	51
जैनदर्शन के आलोक में सल्लेखना	53
सल्लेखना : साधना और भारतीय संविधान	73
मोक्षमार्ग पाथेय : सल्लेखना	94
सल्लेखना : वर्तमान परिप्रेक्ष्य	99
सल्लेखनाव्रत का आचारशास्त्रीय पक्ष	108
सल्लेखना-विधि एवं उसका संवैधानिक आधार	115
जैनधर्म की अनादि परंपरा : सल्लेखना	121
जीवन का अद्भुत क्षण : सल्लेखना	129
सल्लेखना : मृत्यु महोत्सव	137
एक साक्षात्कार	139
सल्लेखना/संथारा	144
सल्लेखना	146
Are You Ready ???	150
धर्म आत्मभाषा है	151
SALLEKHANA	153

Scanned by CamScanner

जैनधर्म की अनादि परंपरा : सल्लेखना

- डॉ. योगेश कुमार जैन
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सभी संसारी प्राणी सुख की खोज में अपना पूरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं, फिर भी कोई भी प्राणी यथार्थ, अपूर्व, अक्षय और अनन्त सुख को प्राप्त नहीं कर पा रहा है कारण सभी प्राणी अपने-अपने सन्दर्भों में सुख खोज रहे हैं। यह सर्वमान्य सत्य है कि जिस प्रकार मोक्ष एक है और उसका मार्ग भी एक ही है, उसी प्रकार यथार्थ चिरस्थायी सुख एवं उसकी प्राप्ति का मार्ग दोनों एक ही हैं। भौतिक जगत् में सर्वसुविधा युक्त विलासितामय जीवन एवं ऐहिक सुख की कामना वाले मनुष्य से जब कभी पारलौकिक सुख आत्मिक सुख शांति की बात ही जाती है तो उसे बहुत बड़ा आश्चर्य होता है, सच कहा जाए तो वह चौंक जाता है तथा जिज्ञासा करता है कि यह क्या है ?

इसका कारण तत्त्वज्ञान जिनवाणी के पठन-पाठन की परम्परा का लोप होना ही है। परन्तु आज भी यह नहीं कहा जा सकता कि सम्पूर्ण जगत् ही भौतिकता की चकाचौंध में अंधा हो गया है। जीवन के आखिरी पड़ाव पर आकर आज भी पारलौकिक सुख एवं अगले भव की चिंता प्रत्येक जनमानस में व्याप्त हो जाती है एवं उसका उपाय भी किया जाता है। यहाँ हमें यह विचार करना है कि क्या आज भी हम यथार्थ सुख को प्राप्त कर सकते हैं या नहीं ?

यदि कर सकते हैं तो उसका उपाय क्या है? सर्वप्रथम तो हमें यह सोचकर चलना होगा कि मोक्षमार्ग अर्थात् सच्चा सुख एवं उसकी प्राप्ति का उपाय कभी भी अवरुद्ध नहीं होता। यदि हम जिनेन्द्र परमात्मा के बताये मार्ग पर चलें तो आज भी यथार्थ सुख प्राप्त कर सकते हैं तथा परम्परा से मुक्ति के पात्र भी बन सकते हैं।

आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र मे मोक्षमार्ग को परिभाषित करते हुए लिखा है कि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।[1] अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की एकरूपता ही मोक्ष का मार्ग है। यहाँ उन्होंने मोक्ष का मार्ग बताकर सम्यग्दर्शन को भी परिभाषित करते हुए लिखा है कि

Scanned by CamScanner

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्[2] अर्थात् भली प्रकार से जीवादिसात तत्त्वों एवं उसके अर्थ का श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है।

जैसा कि छहढालाकार ने लिखा है-

सम्यक् साधै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपक तैं होई।।[3]

सम्यक् श्रद्धा होने पर ज्ञान स्वयं ही सम्यग्ज्ञान हो जाता है तथा सम्यग्ज्ञानी जीव का आचरण अपने आप में पवित्र एवं विशुद्ध होता है। सम्यग्ज्ञानी सदा सम्यक्चारित्र की प्राप्ति का प्रयास करता है एवं इसी प्रक्रिया में वह ग्रहस्थ श्रावक है तो अणुव्रतों का पालन करता है एवं यदि श्रमण है तो महाव्रतों का पालन करता है। दोनों ही अपने व्रतों की पालना में दोष नहीं लगाते तथा सदा विशुद्धि का प्रयास करते हैं। यहाँ विशुद्धि से तात्पर्य आचरण से न होकर आत्मिक विशद्धि से है।

गृहस्थ श्रावक सम्यग्ज्ञान के जोर से सदा धर्म ध्यान में रत रहने का प्रयास करता है तथा श्रमण मनि शुक्लध्यान हेतु कषायों को कृश कर शुभ लेश्याओं में भी शुक्ल लेश्या मय परिणामों के साथ ही क्षपक-श्रेणी में जाने का प्रयास करता है। जिसमें कर्म स्वतः ही क्षय को प्राप्त होने लगते है, कषायें समाप्त हो जाती हैं, लेश्या में शुक्ल लेश्या एवं ध्यान भी धर्म एवं शुक्ल हो - ऐसी विशुद्धि सहज ही सभी जीवों के नहीं होती। अतः इसकी प्राप्ति हेतु श्रावक एवं मुनि दोनों ही अपने योग्य आचरण का पालन करते हुए अनित्यादि बारह भावनाओं का चिन्तन कर जीवन के अन्तिम समय में समाधिमरण अर्थात् सल्लेखना जिसे संथारा भी कहा जाता है, धारण करते हैं। इससे मनुष्य जन्म का यह भव तो शांत परिणामों से पूर्ण होता ही है, साथ ही आगामी जन्म में भी सहज सुख साधनाओं का लाभ जिससे धर्मध्यान की परम्परा अक्षुण्ण बनी रहे, प्राप्त होता है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि सल्लेखना क्या है? उसके धारक की भूमिका कैसी होनी चाहिए? सल्लेखना के समय, परिणाम एवं चिन्तन धारा कैसी होनी चाहिए? सम्यक्विशुद्धि सहित सल्लेखना का फल क्या होता है? आदि।

Scanned by CamScanner

सल्लेखना बनाम आत्महत्या

सल्लेखना चारित्र का एक अंग है। जैनधर्म में चारित्र के दो भेद किये गये है - व्यवहार चारित्र एवं निश्चय चारित्र। सम्यक्चारित्र, सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान साहित होता है तथा इसी सम्यक्चारित्र के अन्तर्गत महाव्रतों के पालन में श्रमण मुनि अंतिम क्षणों में समाधि को धारण कर आत्मस्थ हो जाते हैं और आत्मसाक्षात्कार के साथ ही बाह्य समस्त विकल्पों से पृथक् हो जाते हैं। समाधि की यह प्रक्रिया ही सल्लेखना कहलाती है। आचार्य पूज्यपाद सल्लेखना को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि सम्यक्कायकषायलेखना सल्लेखना। कायस्य बाह्यस्याभ्यन्तराणां च कषायाणां, तत्कारणाहापन क्रमण सम्यग्लेखना सल्लेखना।।[4] अर्थात् अच्छे प्रकार से काय और कषाय का लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है। तात्पर्य यह है कि बाह्य में शरीर का और अंतरंग में कषायों का (उत्तरोत्तर काय और कषाय को पुष्ट करने वाले कारणों को घटाते हुए) भले प्रकार से लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है। सल्लेखना का उद्देश्य आन्तरिक विकारों का विसर्जन करना है। सल्लेखना अर्थात् समाधि धारण करने वाले संयमी साधक जीव को उपदेश देते हुए 'उपासकाध्ययन' में लिखा है कि -

उपवासदिभिरङ्गे कषायदोषे च बोधिभावनया।
कृतसल्लेखनकर्मा प्रायाय यतेत गणमध्ये।। [5]

जो समाधिमरण करना चाहता है, उसे उपवास वगैरह के द्वारा शरीर को और ज्ञानभावना के द्वारा कषायों को कृश करके किसी मुनि संघ में चला जाना चाहिए। यहाँ जो से तात्पर्य गृहस्थ श्रावक से ही है। अतः सल्लेखना श्रावक एवं मुनि के द्वारा की जाने वाली संयम की आराधना ही है। साधक सर्व प्रथम अनन्त कषाय से युक्त परिणामों को छोड़कर आत्मा में तत्त्वार्थ श्रद्धान करता है तथा तत्त्वश्रद्धान से होने वाली सम्यक्त्व की विशुद्धि के कारण संयम की आराधना अर्थात् संयम पूर्वक मरण अथवा समाधिमरण करने वाले के परिणाम शोक-भय-चिंता-मोह एवं ममत्व रहित, संसार और शरीर के भोगों के से विरक्त, मंद कषाय मुक्त, धर्म में उत्साहवान तथा आत्म-कल्याण की इच्छारूप होते हैं। समाधिरत साधक जीव के भाव शुभ एवं शुद्ध होने चाहिए। यदि गृहस्थ श्रावक सल्लेखना धारण करता है तो वह सदा शुभभावमय प्रवृत्ति करता है। यथा संयम, धर्मध्यान, आध्यात्मिक शास्त्रों का पठन-पाठन, श्रवण, मनन तथा धार्मिक चर्चा में

Scanned by CamScanner

ही अपना समय व्यतीत करने वाला साधक की अन्तरंग में कषाय रहित परिणामों के साथ पांच अणुव्रतों के पालन में सन्नद्ध होकर बाह्य एवं अन्तरंग परिग्रह का त्याग करने से सहज ही राग-द्वेष से रहित प्रवृत्ति होती है तथा शुद्धोपयोग का प्रयास सम्यक्त्व विशुद्धि के कारण चलता रहता है। सम्यक्त्व विशुद्धि से तात्पर्य अष्टांग सहित सम्यग्दर्शन एवं ज्ञान का होना एवं इस अवस्था में होने वाले सभी अतिचारों का अभाव होना है।

सल्लेखना यदि श्रमण मुनि धारण करता है तो उसके रत्नत्रयस्वरूप विशुद्धि अर्थात् अनन्तानुबन्धी, प्रत्याख्यान एवं अप्रत्याख्यान सम्बन्धी कषाय चौकड़ी (क्रोध-मान-माया-लोभ) का अभाव होने से जो विशुद्धि होती है उसके साथ ही वह श्रमण समाधिस्थ अवस्था में परिणामों में निर्मलता बनी रहे तथा आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया अनवरत चलती रहे इसके लिए बारम्बार ध्यानस्थ होता है तथा बाह्य में अनुप्रेक्षा चिंतन करता है। श्रमण साधक राग-द्वेष से रहित तो होता ही है, यदि संघनायक या गणश्रेष्ठ है तो जो संघ का ममत्व एवं शिष्यों के प्रति स्नेह है उसे भी पूर्णतया समाप्त करता है और शुभ एवं शुद्धभावों में विचरण करता है।

यदि समाधि साधक जीव के सम्यक्त्वविशुद्धि नहीं है तो उसके परिणामों में निर्मलता नहीं होने से रागद्वेष की प्रवृत्ति बनी रहती है, जिससे अशुभभाव होते हैं तथा इससे कर्मबन्ध होता है निर्जरा नहीं। नीचगति का बंध भी हो सकता है। समाधिस्थ मुनि अथवा श्रावक (यहां श्रावक से तात्पर्य ग्यारह प्रतिमाधारी अणुव्रती, सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान का धारी श्रावक से है।) सल्लेखना की अवस्था में बाह्य क्रियाओं से विरक्त होकर शुभभावों के साथ अपने रत्नत्रय की विशुद्धि में वृद्धि करने के उद्देश्य से धर्मध्यान के साथ-साथ शुक्लध्यान में रत रहने का प्रयास करता है। जिस जीव के आर्त्त-रौद्र ध्यानमय प्रवृत्ति है तथा बाह्य में सल्लेखना धारण करता है वह रत्नत्रय की विशुद्धि से रहित चारित्रधर्म से विरक्त संसारमार्गी ही है। भगवती आराधना में क्षपक साधक की प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है कि -

अट्ठे चउप्पयारे रूद्दे य चउव्विधे य जे भेदा।
ते सव्वे परिजाणदि संथारगओ तओ खवओ।।[6]

Scanned by CamScanner

अवहट्ट अट्टरूदे महाभये सुग्गदीए पचूहे।
धम्मे सुक्के य सदा होदि समण्णागदमदी सो।। [7]

अर्थात् आर्त्त एवं रौद्र ध्यान के चार-चार भेदों को संस्तर पर आरूढ़ क्षपक जानता है। जो जिसको त्यागना चाहता है वह उसको यदि यथार्थ रूप से नहीं जानेगा तो त्यागेगा कैसे? अतः सुगति में विघ्न डालने वाले और महान भय के कारण होने से महाभय रूप रौद्र और आर्त्त ध्यान को त्यागकर वह सम्यक् बुद्धिसम्पन्न क्षपक धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान को ध्याता है। समाधिस्थ क्षपक उपर्युक्त ध्यान क्यों करता है इसे बताते हुए आगे लिखा है कि-

इंदियकसायजोगणिरोधं इच्छं च णिज्जरं विउलं।
चित्तस्य य वसियत्तं मग्गादु अविप्पणासं च।।[8]

अर्थात् इन्द्रिय और कषायों से सम्बन्ध को रोकने, अत्यधिक निर्जरा को चाहने, चित्त को वश में करने और रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग को नष्ट न होने देने के लिए क्षपक शुभध्यान ही करता है। सल्लेखना में स्थित जीव के सम्यक्त्व विशुद्धि के कारण लेश्यामय परिणामों की प्रवृत्ति बताते हुए भगवती आराधनाकार आचार्य शिवार्य लिखते हैं कि -

किण्हा णीला काओ लेस्साओ तिण्णि अप्पसत्थाओ।
पजहइ विरायकरणो संवेगमणुत्तरं पत्तो।।

तेओ पम्मा सुक्का लेस्साओ तिण्णि वि दु पसत्थाओ।
पडिवज्जेइ य कमसो संवेगमणुत्तरं पत्तो।।[9]

क्षपक कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, और शुक्ल में से प्रथम तीन लेश्याओं को त्यागकर वैराग्य भावना से युक्त होकर संसार से भयभीत होता है तथा शेष तीन प्रशस्त लेश्याओं को क्रम से स्वीकार करके उत्कृष्ट संवेग को धारण करता है। जिस जीव के समस्त परिग्रह का त्याग होता है उसी के क्रमानुसार लेश्या की विशुद्धि पायी जाती है। परिणामों की विशुद्धि से ही लेश्या की विशुद्धि होती है। जिस प्रकार ईंधन से आग बढ़ती है और ईंधन के अभाव में बुझ जाती है उसी प्रकार परिग्रह से कषाय बढ़ती है और परिग्रह के अभाव में मंद हो जाती है। यदि अंतरंग में कषाय की मंदता है तो नियम से बाह्य परिग्रह का त्याग होता है तथा अभ्यन्तर

Scanned by CamScanner

में मलिनता होने पर ही जीव बाह्य परिग्रह को ग्रहण करता है। जिस प्रकार बाहर में छिलका रहते हुए चावल की अभ्यन्तर शुद्धि संभव नहीं है उसी प्रकार परिग्रही जीव के लेश्या की विशुद्धि संभव नहीं है।

सल्लेखना धारण करने वाले को सम्यक्त्व की विशुद्धि के कारण अंतिम समय में समाधि मरण के काल में जो क्षपक शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट अंश रूप से परिणत होकर मरण करता है वह नियम से उत्कृष्ट आराधक होता है। यही आराधक क्षायिक सम्यक्त्व, यथाख्यात चारित्र और क्षायोपशमिक ज्ञान की आराधना करके क्षीणमोह होता है और वह बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणमोह तदनन्तर अरिहन्त बनकर कालान्तर में अयोगी अवस्था को प्राप्त होता है। शुक्ललेश्या के शेष मध्यम और जघन्य अंश तथा पद्मलेश्या के उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य अंश रूप से परिणत होकर मरण करने वाला क्षपक मध्यम आराधक होता है।

तेजोलेश्या के अंशरूप से परिणत होकर यदि मरण करता है तो वह जघन्य आराधक होता है। जो क्षपक जिस लेश्या से परिणत होकर मरण करता है वह उसी लेश्या वाले स्वर्ग में उसी लेश्या वाला ही देव बनता है। इस प्रकार उत्कृष्ट आराधना का पालन करके केवलज्ञानी होकर सम्पूर्ण क्लेशों से छूट जाते हैं और लोक के शिखर पर विराजमान होते हैं। किन्तु जिनके कर्मबन्धन शेष रहता है वे मिथ्यात्व को नष्ट करके तथा कषायों का और हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, तीनों वेदों का मंथन करके, पांच समिति और तीन गुप्तियों के द्वारा सम्यक रूप से संवर करके समस्त परिग्रह से रहित होकर धीरता पूर्वक मन में हीनता का भाव नहीं लाते। मोहरहित होकर सुख और दुःख में समभाव रखते हैं। मन, वचन, काय को समाहित करके चारित्र में सम्यग्निष्ठ रहते हैं तथा धर्मध्यान या प्रथम शुक्लध्यान में उपयोग लगाते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सल्लेखना अथवा समाधिमरण जैसा कोई व्रत जैनेतर संस्कृति में प्रायः उपलब्ध नहीं होता है। जैन धर्म में तो निर्विकारी साधु अथवा श्रावक के मरण को मृत्युमहोत्सव का रूप दिया गया है, जबकि अन्यत्र किसी धर्म में ऐसा कोई प्रसंग ही नहीं आता। वस्तुतः यह व्रत अन्तिम समय में

Scanned by CamScanner

आध्यात्मिक और पारलौकिक क्षेत्र में अपनी आत्मा को विशुद्धतम बनाने के लिए एक बहुत सुन्दर साधन है। जैनधर्म की यह एक अनुपम देन है। वैदिक संस्कृति में 'प्रायोपवेशन' 'प्रायोपगमन' जैसे कतिपय शब्द सल्लेखना के समानार्थक अवश्य मिलते हैं पर उनमें वह विशुद्धता तथा सूक्ष्मता दिखाई नहीं देती। अधिक संभव यह है कि वैदिक संस्कृति पर जैन संस्कृति का प्रभाव पड़ा होगा, फिर भी इसे हम 'भक्तप्रत्याख्यानमरण' कह सकते हैं। इस अवस्था में भी साधक के मन में किसी प्रकार की इह लोक, परलोक, जीवित, मरण और कामभोग की आकांक्षा नहीं होनी चाहिए। उसे पूर्ण निरासक्त और निष्कांक्ष होना आवश्यक है। समभाव की प्राप्ति भी तभी हो सकती है जब वह निर्मोही हो जायेगा। जैन संस्कृति की सल्लेखना में मुमुक्षु की मानसिक अवस्था का सुन्दर संयोजन होता है। उसका मन समस्त विकारों से रहित एवं वीतरागपरिणामों सहित होता है और ऐसा सम्यक्त्व की विशुद्धि अर्थात् निर्मल परिणामों के कारण होता है।

आज कुछ लोग अज्ञानता के कारण जैनधर्म सम्मत संयम की आराधना अर्थात् सल्लेखना को जिसे साधक, श्रावक अथवा मुनि स्वेच्छा से स्वीकार करता है उसे आत्महत्या के समान सिद्ध करने हेतु न्यायालय में अपना अधूरा एवं एकतरफा पक्ष रखकर जैनाचार के विरोध में आये फैसले से प्रसन्न हो रहे हैं, परन्तु वे यह नहीं जानते कि इस लोक में मृत्यु तो समस्त जगत् के जीवों को आताप करने वाली है, किन्तु सम्यग्ज्ञानी जीवों के लिए तो वह अमृत का साथ अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाली है।

जैसे मिट्टी के कच्चे घड़े को अमृतरूप जल भरने के लिए अग्नि में पकाया जाता है, यदि कच्चे घड़े को अग्नि में विधिपूर्वक नहीं पकाया जाये तो घड़े में जल नहीं रखा जा सकता है, अग्नि में एकबार पक जाने पर उस घड़े में बहुत समय तक जल भरकर रखा जा सकता है, उसी प्रकार मष्यु के समय यदि एक बार समभावों से आताप सहन कर लिया जाये तो यह जीव निर्वाण का पात्र हो जाता है। अतः हमें समस्त राग-द्वेषादि विकार भावों से रहित होकर सम्यक्त्व की विशुद्धि पूर्वक सल्लेखना धारण कर कर्ममल से रहित अयोगी अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास करना

Scanned by CamScanner

चाहिए। भवसागर से पार उतरने का एक मात्र साधन संयम की आराधना ही है तथा जिनका जीवन पूर्णता की ओर है अथवा जिन्हें बिना किसी सांसारिक कारणों के जीने की चाह नहीं है वे अपने शेष जीवन में संयम की आराधना को स्वीकार कर शास्वत सत्य 'मृत्यु' को महोत्सव बनाकर स्वयं भी आत्मिक आनंद का आस्वादन करें तथा अपने परिजनों को भी संयम की आराधना करने हेतु प्रेरित करें। जैन परंपरा में सल्लेखना 'जो कि पूर्णतः संयम की आराधना ही है' की अनादि परंपरा है। जैन साधु अपने जीवन के अंत समय में संयम की उत्कृष्ट आराधना हेतु सल्लेखना को धारण करते रहे हैं। जैन आगमों एवं दार्शनिक साहित्य में सल्लेखना साधक मुनियों एवं श्रावकों के अनेकानेक उद्धरण उपलब्ध हैं। आचार्य शिवार्य ने भगवती आराधना ग्रन्थ लिखकर संसार के समस्त जीवों के प्रति उपकार करते हुये उन्हें संयम की आराधना की विधि बताकर सल्लेखना साधक जीव के आत्म परिणाम अल्पकषाय मय होने से उसे क्रमशः स्वर्ग एवं मोक्ष का अधिकारी भी घोषित किया है। सल्लेखना पूर्णतः स्वेच्छा पूर्वक संयम का ग्रहण है किसी भी प्रकार के अवसाद में लिया गया फैसला नहीं है अतः इसे संयम की साधना ही माने तथा हमारी अनादिकालीन परंपरा के पालन में किसी भी प्रकार के भ्रम को स्थान न दें।

संदर्भ

(Endnotes)

[1] तत्त्वार्थ सूत्र, १/१।

[2] तत्त्वार्थ सूत्र, १/२।

[3] छहढाला, तीसरी ढाल

[4] सर्वार्थसिद्धि, ७/२२, पश. २८०।

[5] उपासकाध्ययन, कल्प, ४५/८६६, पष, ३२३।

[6] भगवती आराधना, गाथा १६६६।

[7] भगवती आराधना, गाथा १६६६।

[8] भगवती आराधना, गाथा १७००।

[9] भगवती आराधना, गाथा १६०२-०३।

Scanned by CamScanner

Scanned by CamScanner